|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 7: ज्ञानविज्ञानयोग

2/2 (श्लोक 4-30), रविवार, 25 सितंबर 2022

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/6Hug7GTxc8k

अपरा प्रकृति और परा परमात्म तत्व

पारम्परिक प्रार्थना, मंत्रोच्चार के मध्य, भव्य दीप प्रज्वलन एवं गुरु देव को नमन करते हुए आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ। यह एक शाश्वत सत्य है कि हमने भगवद्गीता का चयन नहीं किया बल्कि हमारे अपने एवं पूर्वजो के इस जन्म और पूर्व जन्मों के सुकृत एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता ने अपने सान्निध्य का सुअवसर हमें प्रदान किया है। इस अध्याय ज्ञानविज्ञानयोग के श्लोकों में भगवान वेदाङ्गों, उपनिषदों के गूढ़ एवं महत्वपूर्ण रहस्य समझा रहे हैं। भगवान यहाँ Refrential अर्थात संदर्भगत बातें बता रहे हैं। वेदांगों और उपनिषदों का सम्पूर्ण सार तत्व इन श्लोकों में समाहित है।

7.4, 7.5

भूमिरापोऽनलो वायुः(ख्), खं(म्) मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं(म्) मे, भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥4॥
अपरेयमितस्त्वन्यां(म्), प्रकृतिं(म्) विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां(म्) महाबाहो, ययेदं(न्) धार्यते जगत्॥5॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश - (ये पंच महाभूत) और मन, बुद्धि तथा अहंकार - इस प्रकार यह आठ प्रकार के भेदों वाली मेरी अपरा प्रकृति है। हे महाबाहो ! इस अपरा प्रकृति से भिन्न जीवरूप बनी हुई मेरी परा प्रकृति को जान, जिसके द्वारा यह जगत धारण किया जाता है। (7.4-7.5)

विवेचन : श्रीभगवान अपरा और परा की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि पृथ्वी, जल, तेज अर्थात अग्नि, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत एवं मन बुद्धि तथा अहंकार इन आठ प्रकार के भेदोंवाली भगवान की अपरा प्रकृति है। प्रकृति - प्र + कृति अर्थात सबसे पहले जो किया गया। प्रकृति को स्वभाव भी कहा गया है। उदाहरण स्वरूप एक ही व्यक्तव्य को दो तरह से कहा जा सकता है जैसे मीठा खाना मेरी प्रकृति अथवा स्वभाव है। इसके दो अंग हैं समष्टि और व्यष्टि। इस प्रकृति और पुरुष के संयोग से ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। भगवद्गीता में ही नहीं अन्यत्र भी इन्ही आठ तत्वों को अध्याय तेरह के पाँचवे श्लोक में चौबीस बताया गया है और सांख्य योग में एक से अट्ठाइस तक इनका विस्तार बताया गया है। भूमि, जल, वायु, अग्नि और आकाश अपरा अर्थात जड़ हैं एवं परम् पिता परमेश्वर चेतन - परा। भगवान शंकराचार्य ने इसे **अहम् ब्रह्मास्मि तत् त्वम् असि** कह कर परिभाषित किया है इनको समझने हेतु अत्यन्त ही सूक्ष्मता से अन्वेषण करना पड़ता है। परा - प्रकृति सीधे भगवान से जुड़ने का

मार्ग है। जिस प्रकार हमारे वस्त्र हैं, हमारे शरीर के विभिन्न अंग हैं कान हैं ,नाक है, अब हम वस्त्र तो किसी को भी दे सकते हैं पर कान देना असम्भव है।

7.6

एतद्योनीनि भूतानि, सर्वाणीत्युपधारय।
अहं(ङ्) कृत्स्नस्य जगतः(फ्), प्रभवः(फ्) प्रलयस्तथा॥6॥

सम्पूर्ण प्राणियों के (उत्पन्न होने में) अपरा और परा - इन दोनों प्रकृतियों का संयोग ही कारण है - ऐसा तुम समझो। मैं सम्पूर्ण जगत का प्रभव तथा प्रलय हूँ।

विवेचन - श्रीभगवान बताते हैं कि समस्त भूत प्राणी, भूत पदार्थ भौतिकता वाद के सिद्धांत पर कार्य करता है। सब कुछ जो भी भूत पदार्थ दिखाई देता है वह मुझसे ही बना है। सब में **मैं** ही समाहित हूँ। सारा अच्छा और बुरा सब कुछ मुझ में ही है, मुझसे ही है। एक उदाहरण से इसे समझाया गया। एक साधु भूखा था वह एक मिठाई की दुकान पर गया और हलवाई से कुछ जलेबी की याचना की, हलवाई ने उसे जलेबी तो नहीं दी बल्कि एक पत्थर और मार दिया। साधु के सर से रक्त बहने लगा। वहाँ से एक सज्जन पुरुष जा रहे थे उन्होंने साधु के माथे से रक्त बहते देखा तो द्रवित हो गये और मिठाई की दुकान से रबड़ी, मलाई और जलेबी खरीद कर साधु को खिलाई। साधु ने ऊपर देख कर कहा कि तू भी कैसे - कैसे खेल खेलता है कभी पत्थर मारता है कभी मिठाई खिलाता है। सज्जन पुरुष ने कहा मैंने आपको कब पत्थर मारा मैं तो अभी आया हूँ साधु ने कहा मैं तुमसे नहीं उससे बात कर रहा हूँ।

कबीर दास जी के एक सुन्दर भजन के माध्यम से इसकी सटीक व्याख्या की गयी नर नारी, बालक-माता, कीड़ा-हाथी-महावत, देवता - पुजारी, चोर - सिपाही, करता - भरता सब तेरे ही रूप हैं। भजन की लिंक

https://drive.google.com/file/d/1_PKZV4JhI7JUybXVMw_jv3RmvFGeXBqn/view

7.7

मत्तः(फ्) परतरं(न्) नान्यत्, किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं(म्) प्रोतं(म्), सूत्रे मणिगणा इव॥7॥

इसलिये हे धनञ्जय ! मेरे सिवाय (इस जगत का) दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी (कारण तथा कार्य) नहीं है। (जैसे सूत की) मणियाँ सूत के धागे में (पिरोयी हुई होती हैं), ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत मेरे में (ही) ओत-प्रोत है।

विवेचन : इन अपरा और परा प्रकृतियों के समस्त विश्व का निर्माण स्वयं मैं करता हूँ एवं प्रलय भी मैं ही करता हूँ। जिस प्रकार सूत के मणियों की माला होती है। इस माला में सूत का ही धागा होता है और सूत की ही मणियाँ होती हैं हमें वह माला दिखाई देती है पर होता तो वह मात्र सूत ही है। इसी प्रकार इस अपरा और परा प्रकृति के आदि से अंत तक केवल परम् पिता परमात्मा ही व्याप्त हैं। एक अन्य उदाहरण से इसकी और व्याख्या की गई। लोहार के पास एक यंत्र पिण्ड होता है जिसे निहाई अथवा कूट कहते हैं यह लोहे का बना होता है। लोहार जो सामान जैसे चाकू, तलवार, कढ़ाई, तवा इत्यादि बनाता है वे भी लोहे के होते हैं और जिस हथौड़े से पीट कर वह सामान बनाता है वह भी लोहे का ही होता है। अर्थात जिस पर रख कर लोहार पीटता है वह भी लोहे का, जिसको पीटता है वह भी लोहे का और जिससे पीटता है वह भी लोहे का। अब जो कूट अथवा निहाई है वह अपरा प्रकृति है वह जड़ है एक स्थान पर स्थिर है हिलती डुलती नहीं है। जो सामान जैसे कि कढ़ाई, तवा इत्यादि जो बन रहा है वह भूत प्राणी है भूत मात्र है और हथौड़ा परा प्रकृति है - चेतना, चैतन्य स्वरूप परम पिता परमात्मा।

जब शरीर से चेतना निकल जाती है तब उसके साथ उसका नाम भी चला जाता है, उसे उसके नाम से नहीं बल्कि मृत देह अथवा शव कहा जाता है। जिस प्रकार बिजली है यह चेतना है पर उसके प्रवाहित होने के लिए तार चाहिए और उपयोग के

लिए कोई यंत्र जैसे कि बल्ब इत्यादि आवश्यक है। Unmanifest अस्पष्ट को Manifest स्पष्ट करना पड़ता है। हमारे भोजन व्यवस्था को ही लें हम विभिन्न पदार्थों के विभिन्न रूपों का भोजन करते हैं गाजर मूली आदि की जड़ें, दालचीनी आदि का तना, पालक आदि के पत्ते, आम फूलगोभी आदि के फूल एवं मटर आदि के बीज। वैसे तो इन सब की उत्पत्ति बीज से ही हुई है पर भोजन व्यवस्था में इनके विभिन्न स्तरों पर ये हमारे खाने के काम आते है।

अपरा प्रकृति और परा प्रकृति के संयोग से देवताओं के शरीर में प्रकाश तत्व, भूत - प्रेत इत्यादि के शरीर में वायु तत्व की प्रधानता होती है। कुछ प्राणियों के शरीर में जल तत्व की प्रधानता होती है, घरों में पायी जाने वाली मकड़ी इसका एक उदाहरण है वैज्ञानिकों ने अनुसंधान में पाया है कि उसके लार से बनी तारनुमा रस्सी से अधिक सशक्त पदार्थ पृथ्वी पर उपलब्ध नहीं है और वास्तव में वह है क्या मकड़ी की लार अर्थात जल तत्व।

यह पञ्च तत्व भी अलग - अलग नहीं हैं आकाश तत्व में पचास प्रतिशत आकाश तत्व और साढ़े बारह - साढ़े बारह प्रतिशत पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल तत्व हैं। उसी प्रकार अग्नि तत्व में पचास प्रतिशत अग्नि तत्व और बाकी के चारों तत्वों का बराबर - बराबर समिश्रण है। विश्व की जितनी जनसंख्या है उससे अधिक जीवाणु (बैक्टीरिया) तो हमारी पलकों पर रहते हैं। एक उदाहरण और है - मशरुम इसे लोग खाते भी हैं और इसे वनस्पति मानते हैं जबकि वैज्ञानिक कहते हैं कि यह जीवाणु है वनस्पति नहीं है। यह शाकाहारी खाद्य पदार्थ नहीं है।

अपरा और परा को जड़ बुद्धि से समझना भी सम्भव नहीं है यह अनुभव की वस्तु है। जिस प्रकार कढ़ी, पकौड़ी, बेसन की रोटी, गट्टा सब कुछ एक तत्व चने से बना है पर उन सब का स्वरूप अलग - अलग होने के कारण केवल अनुभवी व्यक्ति ही उसके चने के मूल स्वरूप का चिन्तन कर सकता है उसी प्रकार अपरा और परा प्रकृति को पूर्णतया समझने के लिए अनुभव की आवश्यकता है।

7.8, 7.9, 7.10, 7.11

रसोऽहमप्सु कौन्तेय, प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः(स्) सर्ववेदेषु, शब्दः(ख्) खे पौरुषं(न्) नृषु॥8॥
पुण्यो गन्धः(फ्) पृथिव्यां(ञ्) च, तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं(म्) सर्वभूतेषु, तपश्चास्मि तपस्विषु॥9॥
बीजं(म्) मां(म्) सर्वभूतानां(म्), विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि, तेजस्तेजस्विनामहम्॥10॥
बलं(म्) बलवतां(ञ्) चाहं(ङ्), कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु, कामोऽस्मि भरतर्षभ॥11॥

हे कुन्तीनन्दन! जलों में रस मैं हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रभा (प्रकाश) मैं हूँ, सम्पूर्ण वेदों में प्रणव (ओंकार), आकाश में शब्द (और) मनुष्यों में पुरुषार्थ (मैं हूँ)।
पृथ्वी में पवित्र गन्ध (मैं हूँ), और अग्नि में तेज मैं हूँ तथा सम्पूर्ण प्राणियों में जीवनी शक्ति (मैं हूँ) और तपस्वियों में तपस्या मैं हूँ।
हे पृथानन्दन ! सम्पूर्ण प्राणियों का अनादि बीज मुझे जान। बुद्धिमानों में बुद्धि (और) तेजस्वियों में तेज मैं हूँ।
हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! बलवालों में काम और राग से रहित बल मैं हूँ और प्राणियों में धर्म से अविरुद्ध (धर्मयुक्त) काम मैं हूँ।

विवेचन : श्रीभगवान इन चार श्लोकों में अर्जुन से कहते हैं कि समस्त विश्व में जो भी दिख रहा है या नहीं दिख रहा है सब मैं हूँ। इसे यहाँ व्यष्टिगत भाव से न समझ कर समष्टिगत भाव से समझना होगा। जलों में रस, चन्द्रमा और सूर्य में प्रभा अर्थात प्रकाश, वेदों में प्रणव, आकाश में शब्द, मनुष्यों में पुरुषत्व, पृथ्वी में पवित्र सुगन्ध, अग्नि में तेज, समस्त प्राणियों में प्राण, तपस्वियों में तपस्या, समस्त प्राणियों में बीज तत्व, बुद्धिमानों में बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, बलवानों का बल एवं समस्त भूत जगत में धर्मयुक्त काम **मैं** ही हूँ। अर्थात यह परा शक्ति जिसे परमात्मा कहा जाता है इन सभी अपरा शक्तियों में विद्यमान है।

7.12

ये चैव सात्त्विका भावा, राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि, न त्वहं(न्) तेषु ते मयि॥12॥

और तो क्या कहूँ - जितने भी सात्त्विक भाव हैं (और) जितने भी राजस तथा तामस (भाव हैं, वे सब) मुझ से ही होते हैं - ऐसा उनको समझो। परन्तु मैं उनमें (और) वे मुझमें नहीं हैं।

विवेचन : भगवान इस की और सूक्ष्म व्याख्या और विस्तार करते हुए बताते हैं कि सभी सात्विक, राजस और तामस भाव में भी मैं ही विद्यमान हूँ। पर रहस्यमय सिद्धांत यह है कि मैं तो उनमें हूँ पर वे मुझमें नहीं हैं। उदाहरण स्वरुप अगर हम धूप में निकलते हैं तो हमारी परछाई हमारे साथ साथ चलती है, सूर्य की स्थिति के अनुसार कभी छाया हमारे आगे, कभी पीछे, कभी दायें, कभी बाएं और कभी नीचे, अब यह छाया अथवा परछाई है तो सूर्य के कारण पर इसमें सूर्य है क्या ? सूर्य छाया में विद्यमान नहीं है पर इस छाया का अस्तित्व केवल मात्र सूर्य के कारण है। इसी प्रकार यह परा तत्व परमात्मा सभी गुणों में समान रूप से उपस्थित है।

7.13

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैः(र्), एभिः(स्) सर्वमिदं(ञ्) जगत्।
मोहितं(न्) नाभिजानाति, मामेभ्यः(फ्) परमव्ययम्॥13॥

किन्तु - इन तीनों गुण रूप भावों से मोहित यह सम्पूर्ण जगत (प्राणिमात्र) इन गुणों से अतीत अविनाशी मुझे नहीं जानता।

विवेचन : श्रीभगवान कहते हैं कि यह सम्पूर्ण प्राणी जगत इन त्रिगुण अर्थात सत्व, रज और तम के मोह से मोहित हो कर मुझे इन गुणों में खोजता है जब कि मेरा अविनाशी रूप केवल मात्र इन तीनों गुणों से ऊपर उठ कर गुणातीत अवस्था में ही देखा और प्राप्त किया जा सकता है। जैसे अँधेरे को हम देख नहीं सकते,देखने के लिए प्रकाश चाहिए वैसे ही जो त्रिगुणा अवस्था है उसमें त्रिगुणातीत की प्रतीती नहीं हो सकती।

7.14

दैवी ह्येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते, मायामेतां(न्) तरन्ति ते॥14॥

क्योंकि मेरी यह गुणमयी दैवी माया दुरत्यय है अर्थात् इससे पार पाना बड़ा कठिन है। जो केवल मेरे ही शरण होते हैं, वे इस माया को तर जाते हैं।

विवेचन : माया से आच्छादित मन इन तीन गुणों में ही उलझा रहता है और इस माया के वश में आ कर न केवल अपने को सर्वशक्तिमान समझने लगता है बल्कि उसे यह भ्रम भी होने लग जाता है कि उसने माया को जीत लिया। श्रीभगवान कहते हैं कि यह गुणमयी दैवी माया भी मेरी ही रचना है एवं इस पर विजय पाना दुष्कर कार्य है। एक कथा के माध्यम से इसे समझाया गया। यह भ्रम नारद जी को भी हो गया कि उन्होंने माया पर विजय प्राप्त कर ली है। यह जो माया पर विजय प्राप्त करने का गर्व हो जाता है वह विनाशकारी होता है और इसे तोड़ने के लिए श्रीकृष्ण ने एक माया रची। नारद जी ने श्री कृष्ण से कहा कि मैंने माया पर विजय प्राप्त कर ली है, इसके उत्तर में श्री कृष्ण ने नारद ऋषि से कहा कि वे पास के सरोवर में स्नान कर के आयें तत्पश्चात वे उन्हें ब्रह्म ज्ञान देंगे। नारद मुनि ने जैसे ही सरोवर में डुबकी लगाई वे किसी राज्य में पहुँच गए और वहां पहुंचते ही एक हाथी ने उनके गले में एक फूलों की माला डाल दी। उस राज्य के परम्परा अनुसार वहाँ की प्रजा ने अपने राजा की मृत्यु हो जाने के कारण उनको अपने राज्य का राजा का नया नियुक्त कर दिया, उनका विवाह एक सुन्दर कन्या से करवा दिया और उनके दो पुत्र भी हो गए। इस प्रकार दस वर्ष बीत गए अचानक एक दिन रानी का स्वर्गवास हो गया, उस राज्य की परम्परा अनुसार रानी की मृत्य पर रानी के संग राजा को भी उसी चिता पर जलाने की प्रथा थी। अब नारद जी घबराये, उसी क्षण श्री कृष्ण ने उन्हें सरोवर से खींच कर बाहर निकाला और पूछा नारद जी आप को तो मैंने डुबकी लगाने भेजा था आप कहाँ रह गए,

नारद जी तो अचम्भित थे। उन्होंने कहा हे कृष्ण मैं तो एक राज्य का राजा था, मेरे दो पुत्र थे इत्यादि इत्यादि, इस पर श्री कृष्ण ने कहा कि आप ये सब क्या कह रहे हैं अभी दो मिनट पहले ही तो आप सरोवर में स्नान करने गए थे। अब नारद जी को भान हुआ कि मैं माया जाल में उलझ गया था। ये जो भगवान की गुणमयी माया है उसमें बड़े से बड़े साधू महात्मा, संत, मुनि, ऋषि उलझ जाते हैं और इससे पार पाने का एक मात्र उपाय है श्री भगवान के शरणागत हो जाये।

7.15

न मां(न्) दुष्कृतिनो मूढाः(फ्), प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना, आसुरं(म्) भावमाश्रिताः॥15॥

परन्तु - माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा गया है, (वे) आसुर भाव का आश्रय लेने वाले (और) मनुष्यों में महान नीच (तथा) पाप-कर्म करने वाले मूढ़ मनुष्य मेरे शरण नहीं होते।

विवेचन : यह माया इतनी प्रभावशाली है कि इसके वश में आ कर सभी को इस संसार की माया ही प्यारी लगने लग जाती है और वे पाप कर्म करने को उद्यत हो जाते हैं।

7.16

चतुर्विधा भजन्ते मां(ञ्), जनाः(स्) सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ॥16॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! पवित्र कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी - (ये) चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं अर्थात् मेरे शरण होते हैं।

विवेचन : श्री भगवान अर्जुन से कहते हैं कि चार प्रकार के लोग मेरी आराधना करते हैं ,मेरा भजन करते हैं।

अर्थार्थी : ये भक्त कुछ पाने की लालसा से कुछ प्राप्ति के लिए मेरा भजन करते हैं। यह करना गलत भी नहीं है, ध्रुव, सुदामा आदि इस श्रेणी के भक्त हैं।

आर्त : जो भक्त दुःख से दुःखी हो कर मेरा भजन करते हैं मुझे पुकारते हैं - गजेंद्र, द्रौपदी, उत्तरा आदि भक्त इस श्रेणी में आते हैं।

जिज्ञासु : मेरे से ज्ञान प्राप्ति हेतु अथवा मुझे जानने के लिए इस प्रकार के भक्त मुझे भजते हैं, अर्जुन तू स्वयं, उद्धव जी, नचिकेत इत्यादि भक्त इस श्रेणी में आते हैं।

ज्ञानी : जो ज्ञानी हैं मेरे बारे में जानते हैं ऐसे भक्त भी मेरा भजन करते हैं सुकदेव जी, हनुमान जी इत्यादि ज्ञानी भक्त इस श्रेणी में आते हैं।

समयाभाव के फ़लस्वरूप एक सुन्दर भजन की मात्र दो पंक्तियाँ गुनगुनाई गयीं

निर्बल के बल राम, सुन री माई निर्बल के बल राम।

7.17

तेषां(ञ्) ज्ञानी नित्ययुक्त, एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थम्, अहं (म्) स च मम प्रियः॥17॥

उन चार भक्तों में मुझ में निरन्तर लगा हुआ, अनन्य भक्ति वाला ज्ञानी अर्थात् प्रेमी भक्त श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी भक्त को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह भी मुझे (अत्यन्त) प्रिय है।

विवेचन : श्रीभगवान आगे कहते हैं इन सब में भी मुझे सबसे अधिक प्रिय प्रेमी भक्त जो मुझे निष्काम भाव से भजता है वह है। एक बार की बात है महाभारत का युद्ध चल रहा था। शाम से समय अर्जुन श्रीकृष्ण के खेमे में गए अर्जुन ने देखा श्रीकृष्ण ध्यानमग्न हैं। अर्जुन अचम्भित हो गये कि जिन त्रिलोकी के नाथ का ध्यान सभी करते हैं वे किसका ध्यान कर रहे हैं। ध्यान समाप्त होने पर अर्जुन ने अपनी जिज्ञासा प्रभु के समक्ष रखी। श्रीकृष्ण अर्जुन को खेमे से बाहर ले कर भीष्म पितामह की शर - शैय्या के पास लाये, भीष्म पितामह उस शर - शैय्या पर ध्यान मग्न हो श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। श्रीभगवान ने अर्जुन से कहा कि जो भक्त मेरा ध्यान करते हैं मैं उनका ध्यान निरन्तर करता रहता हूँ।

7.18

उदाराः(स्) सर्व एवैते, ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः(स्) स हि युक्तात्मा, मामेवानुत्तमां(ङ्) गतिम्॥18॥

पहले कहे हुए सबके सब (चारों) ही भक्त बड़े उदार (श्रेष्ठ भाव वाले) हैं। परन्तु ज्ञानी (प्रेमी) तो मेरा स्वरूप ही है - (ऐसा मेरा) मत है। कारण कि वह मुझसे अभिन्न है (और) जिससे श्रेष्ठ दूसरी कोई गति नहीं है, (ऐसे) मुझ में ही दृढ़ स्थित है।

विवेचन : श्रीभगवान कहते हैं कि उपरोक्त चारों प्रकार के भक्त ही श्रेष्ठ हैं पर ज्ञानी अर्थात प्रेमी भक्त उनमें भी अति श्रेष्ठ है।

7.19

बहूनां(ञ्) जन्मनामन्ते, ज्ञानवान्मां(म्) प्रपद्यते।
वासुदेवः(स्) सर्वमिति, स महात्मा सुदुर्लभः॥19॥

बहुत जन्मों के अन्तिम जन्म में अर्थात् मनुष्य जन्म में सब कुछ परमात्मा ही है - इस प्रकार (जो) ज्ञानवान मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

विवेचन : अनेक जन्मों, अनेक भवों की यात्रा के पश्चात इस अंतिम जन्म मनुष्य जन्म में जो ज्ञानवान प्राणी इस तथ्य को समझते हैं कि सब कुछ परमात्म तत्व ही है इस प्रकार के महात्मा बहुत कम मिलते हैं वे दुर्लभ होते हैं।

7.20

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः(फ्), प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं(न्) तं(न्) नियममास्थाय, प्रकृत्या नियताः(स्) स्वया॥20॥

परन्तु - उन-उन कामनाओं से जिनका ज्ञान हरा गया है, (ऐसे मनुष्य) अपनी-अपनी प्रकृति अर्थात स्वभाव से नियन्त्रित होकर उस उस अर्थात देवताओं के उन-उन नियमों को धारण करते हुए उन-उन देवताओं के शरण हो जाते हैं।

विवेचन : सकामी व्यक्ति अपनी - अपनी प्रकृति और कामना के अनुसार उन नियमों पर आधारित देवताओं की पूजा अर्चना प्रारम्भ कर देते हैं।

7.21

यो यो यां(म्) यां(न्) तनुं(म्) भक्तः(श्), श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां(म्) श्रद्धां(न्), तामेव विदधाम्यहम्॥21॥

जो-जो भक्त जिस-जिस देवता का श्रद्धापूर्वक पूजन करना चाहता है, उस-उस देवता में ही मैं उसी श्रद्धा को दृढ़ कर देता हूँ।

विवेचन : श्रीभगवान कहते हैं कि जो भी भक्त जिस किसी भी देवता को भजता है उस देवता में उसकी श्रद्धा को दृढ़ भी मैं ही करता हूँ।

7.22

स तया श्रद्धया युक्तः(स्), तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः(ख्) कामान्, मयैव विहितान्हि तान्॥22॥

उस (मेरे द्वारा दृढ़ की हुई) श्रद्धा से युक्त होकर वह मनुष्य उस देवता की (सकाम भावपूर्वक) उपासना करता है और उसकी वह कामना पूरी भी होती है; परन्तु वह कामना-पूर्ति मेरे द्वारा ही विहित की हुई होती है।

विवेचन : मेरे द्वारा दृढ़ की गयी उस श्रद्धा से युक्त जो भी मनुष्य अपने इष्ट देवता की सकाम भाव से पूजा अर्चना करता है उसकी कामना पूर्ति भी मेरे द्वारा ही सम्पन्न होती है।

7.23

अन्तवत्तु फलं(न्) तेषां(न्), तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति, मद्भक्ता यान्ति मामपि॥23॥

परन्तु उन तुच्छ बुद्धि वाले मनुष्यों को उन देवताओं की आराधना का फल अन्त वाला (नाशवान्) ही मिलता है। देवताओं का पूजन करने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं (और) मेरे भक्त मेरे ही प्राप्त होते हैं।

विवेचन : यह कामना पूर्ति द्वारा उपलब्ध फल क्षणभंगुर होता है, नाशवान होता है जबकि मेरी आराधना करने वाले निष्काम भक्तों को मेरी प्राप्ति होती है। पन्द्रहवें अध्याय के छठवें श्लोक में श्रीभगवान स्वयं कहते हैं - **यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।** अर्थात जिसको प्राप्त होने के पश्चात प्राणी आवागमन से मुक्त हो जाता है।

7.24

अव्यक्तं(म्) व्यक्तिमापन्नं(म्), मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं(म्) भावमजानन्तो, ममाव्ययमनुत्तमम्॥24॥

बुद्धिहीन मनुष्य मेरे परम, अविनाशी (और) सर्वश्रेष्ठ भाव को न जानते हुए अव्यक्त (मन-इन्द्रियों से पर) मुझ (सच्चिदानन्दघन परमात्मा) को मनुष्य की तरह शरीर धारण करनेवाला मानते हैं।

विवेचन : बुद्धिहीन मनुष्य मुझे भी अपने जैसे देह धारी मनुष्य ही मानते हैं। वे मेरे परम् अविनाशी भाव को जानने की क्षमता से रहित हैं।

7.25

नाहं(म्) प्रकाशः(स्) सर्वस्य, योगमायासमावृतः।

मूढोऽयं(न्) नाभिजानाति, लोको मामजमव्ययम्॥25॥

यह जो मूढ़ मनुष्य समुदाय मुझे अज (और) अविनाशी ठीक तरह से नहीं जानता (मानता), उन सबके (सामने) योगमाया से अच्छी तरह से ढका हुआ मैं प्रकट नहीं होता।

विवेचन : यह जो मूढ़ मनुष्य समुदाय है वह मुझे समझने की शक्ति से रहित है। इस प्रकार के मनुष्य अपनी निजी धारणा बना कर उसी में विचरण करते रहते हैं उनके अनुसार राम और कृष्ण महामानव थे भगवान नहीं। उनकी बुद्धि योगमाया से आच्छादित है।

7.26

वेदाहं(म्) समतीतानि, वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि, मां(न्) तु वेद न कश्चन॥26॥

हे अर्जुन ! जो प्राणी भूतकाल में हो चुके हैं, तथा जो वर्तमान में हैं और जो भविष्य में होंगे, (उन सब प्राणियों को) तो मैं जानता हूँ; परन्तु मुझे (भक्त के सिवाय) कोई भी नहीं जानता।

विवेचन : श्रीभगवान कहते हैं कि मैं तो भूत, वर्तमान और भविष्य में जो भी हुए हैं और होंगे उन सब को जानता हूँ पर वे मेरे अविनाशी स्वरूप को नहीं जानते।

7.27

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं(म्), सर्गे यान्ति परन्तप॥27॥

कारण कि - हे भरतवंश में उत्पन्न शत्रु तापन परंतप ! इच्छा (राग) और द्वेष से उत्पन्न होने वाले द्वन्द्व-मोह से (मोहित) सम्पूर्ण प्राणी संसार में (अनादि काल से) मूढ़ता को अर्थात् जन्म-मरण को प्राप्त हो रहे हैं।

विवेचन : श्रीभगवान की दृष्टि से अगर देखा जाये तो यह भूत, वर्तमान और भविष्य की परिकल्पना है ही नहीं। श्रीभगवान के लिए सभी काल एक हैं यह परिकल्पना हमारे जैसे मूढ़ प्राणियों की रचना है।

7.28

येषां(न्) त्वन्तगतं(म्) पापं(ञ्), जनानां(म्) पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता, भजन्ते मां(न्) दृढव्रताः॥28॥

परन्तु जिन पुण्यकर्मा मनुष्यों के पाप नष्ट गये हैं, वे द्वन्द्व मोह से रहित हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन : श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि जिन मनुष्यों ने अपने पाप नष्ट कर लिए हैं जो पाप मुक्त हो गए हैं वे दृढ़ता से मेरी आराधना अनवरत करते रहते हैं।

7.29, 7.30

जरामरणमोक्षाय, मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः(ख्) कृत्स्नम्, अध्यात्मं(ङ्) कर्म चाखिलम्॥29॥

साधिभूताधिदैवं(म्) मां(म्), साधियज्ञं(ञ्) च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां(न्), ते विदुर्युक्तचेतसः॥30॥

वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्ति पाने के लिये जो मेरा आश्रय लेकर प्रयत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को भी जान जाते हैं।
जो मनुष्य अधिभूत तथा अधिदैव के सहित और अधियज्ञ के सहित मुझे जानते हैं, वे मुझमें लगे हुए चित्त वाले मनुष्य अन्तकाल में भी मुझे ही जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं।

विवेचन : वृद्धावस्था और मृत्य से मुक्ति पाने के लिए जो मनुष्य मेरे आश्रय में आकर प्रयत्न करते हैं वे ब्रह्म,आध्यात्म और कर्म सिद्धांत को पूर्णतया जान लेते हैं। इसके बाद श्रीभगवान अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ की व्याख्या का प्रारम्भ करते हैं जिसकी विस्तार से चर्चा आठवें अध्याय में की गयी है।

इस प्रकार इस ज्ञान पूर्ण ज्ञानविज्ञानयोग नामक अध्याय का समापन कुछ पलों के हरिनाम संकीर्तन के संग किया गया।

तत्पश्चात प्रश्नोत्तर के सत्र का शुभारम्भ हुआ जिसमें विवेचक ने जिज्ञासुओं के प्रश्नों के सारगर्भित उत्तर दिए।

प्रश्नकर्ता - सुभाष जी

प्रश्न - परामर्श या सलाह किसे देनी चाहिये।

उत्तर - तीन प्रकार के लोगों को परामर्श दिया जा सकता है -
शिष्य - छात्र, सन्तान और अधीनस्थ कर्मचारी
प्रेमी - मित्र इत्यादि
जिज्ञासु - जो स्वयं परामर्श की आकांक्षा के जानना चाहे।

प्रश्नकर्ता - सीमा जी जालान

प्रश्न - सातवें अध्याय के तेरहवें श्लोक में त्रिगुण किन्हें कहा गया है और सत्रहवें अध्याय में चार वेदों के स्थान पर मात्र तीन वेद क्यों कहे गए हैं।

उत्तर - त्रिगुण हैं सत्व, रज और तम। तीन वेदों में ही धर्म की व्याख्या है। चौथे वेद, अथर्ववेद, में सांसारिक वस्तुओं जैसे अस्त्र - शस्त्र, रथ इत्यादि बनाने की कला बताई गयी है अतः वहाँ तीन वेदों का ही उल्लेख है।

पितृ पक्ष होने के कारण कई श्राद्ध संबधित प्रश्न भी किये गए

प्रश्नकर्ता - कीर्ति कुलकर्णी जी

प्रश्न - चार भाई हों और एक ही शहर में रहते हों तो क्या केवल बड़े भाई को श्राद्ध करना चाहिए ?

उत्तर - सभी भाईयों को एक स्थान पर एकत्रित हो कर एक साथ श्राद्ध करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - रेणु रानी जी

प्रश्न - अनाथालय में बच्चों को भोजन कराने से श्राद्ध का फल प्राप्त होता है क्या ?

उत्तर - अनाथालय में भोजन कराना अच्छी बात है पर श्राद्ध का फल पण्डित को भोजन कराने से ही प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता - रविंद्र शर्मा जी

प्रश्न - कितनी पीढ़ी का श्राद्ध करना चाहिए ?

उत्तर - चार पीढ़ी का श्राद्ध करने का विधान है।

पिता, पितामह, प्रपितामह एवं प्रप्रपितामह अर्थात पिता, दादा, पर दादा और उनके पिता

प्रश्नकर्ता - गायत्री जी सिंह

प्रश्न - आत्मसंयमयोग अध्याय में जिस अष्टांग योग की बात कही गयी है वह क्या पतञ्जलि के योग सूत्र से मिलती है। प्रणव का उच्चारण स्त्रियों को करना चाहिए अथवा नहीं ? न्याय, मीमांसा इत्यादि दर्शन शास्त्र कहाँ उपलब्ध होगा? वेदांत में क्या समाहित है?

उत्तर - पतञ्जलि का योग सूत्र भगवद्गीता के योग सूत्र का एक भाग है, सम्पूर्ण नहीं है। भगवद्गीता के योग का अर्थ है भगवान से जुड़ना। अष्टांग योग और भगवद्गीता के योग में भिन्नता है। जब भगवान अर्जुन से कहते हैं **तस्मात योगी भवार्जुन** तब भी भगवान कर्म योग की बात कह रहे हैं। योग के हज़ारों सूत्र हैं।

प्रणव का उच्चारण तो स्त्रियां कर सकती हैं पर जप नहीं कर सकतीं।

वेदान्त में ब्रह्म सूत्र, उपनिषद और भगवद्गीता का समागम है।

न्याय मीमांसा इत्यादि दर्शन शास्त्र को विस्तार से जानना है तो ये उपलब्ध हैं ,अल्प ज्ञान के लिए यूट्यूब में सामग्री उपलब्ध है।

इस प्रकार इन कतिपय मुख्य मुख्य प्रश्नोत्तर के पश्चात इस स्तर का विधिवत समापन किया गया।

श्रीकृष्णापर्णमस्तु।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां (म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'ज्ञानविज्ञानयोग' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||